

## आचार्यश्री का सबसे बड़ा योगदान

-प्रो. वीरसागर जैन

आचार्य विद्यानन्दजी के वैसे तो अनेकानेक योगदान हैं, जिनकी चर्चा कभी पृथक् से करेंगे, परन्तु मेरी दृष्टि में उनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने पूरी समाज में एकता और समन्वय का वातावरण बनाया। आचार्यश्री इस बात को बहुत गहराई से समझते थे कि समाज की उन्नति के लिए पहली अनिवार्य आवश्यकता यह है कि इसमें एकता और सौहार्द का वातावरण बने, छोटी-छोटी बातों पर आपस की खींचतान समाप्त हो।

उनके अनुसार मतभेद हो सकते हैं, परन्तु मनभेद नहीं होना चाहिए। मतभेद होना तो स्वाभाविक होता है, इतने अधिक लोगों में मतभेद की स्थिति तो आती ही है- 'मुंडे मुंडे मतिभिन्ना', किन्तु मतभेदों के कारण मनभेद की स्थिति नहीं बनने देना चाहिए और समाज में सौहार्द एवं एकता का वातावरण बनाये रखना चाहिए।

तथा मतभेदों को भी हमें बहुत बुरा नहीं मानना चाहिए, क्योंकि मतभेद तो वास्तव में विकास के कारण होते हैं- 'वादे-वादे जायते तत्त्वबोधः'। सद्भावनापूर्ण मतभेद सदैव स्वागत-योग्य होते हैं। केवल दुर्भावनापूर्ण मतभेद ही विभाजन और विनाश के कारण बनते हैं।

एकता या संगठन आज हमारे बीच इसलिए भी अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि हम अल्पसंख्यक हैं और अपनी संस्कृति को संगठित रहकर ही बचा सकते हैं, अन्यथा सब नष्ट हो जाएगा। आज हमारी समाज के हर सदस्य को बहुत ही गंभीरता से एकता या संगठन का महत्त्व समझना चाहिए। उसे तरह-तरह से विचार करना चाहिए कि लोक में सर्वत्र ही संगठन का बड़ा महत्त्व होता है, संगठितों को कभी कोई नहीं छेड़ता है और विभाजित लोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। आचार्यश्री इस बात के लिए अनेक दृष्टान्त और कहानियाँ भी सुनाया करते थे। जैसे कि वे कहते थे कि देखो! मधुमक्खी छोटा-सा जीव है और उसके पास कोई तोप, तलवार आदि कुछ भी नहीं है, परन्तु उससे सब लोग डरते हैं, क्योंकि उनमें संगठन होता है।

अथवा वे इसके लिए एक और अच्छा दृष्टान्त देते थे कि देखो, पानी की एक बूंद यदि अकेली हो तो मिट्टी कहती है कि मैं सोख लूँ और सूर्य कहता है कि मैं सुखा दूँ, किन्तु यदि वही बूंद समुद्र में रहे तो कोई भी उसे नष्ट नहीं कर सकता। यही समाजशास्त्र है, जिसे हम सबको भलीभांति समझना चाहिए।

यदि हमारी समाज संगठित होगी तो अल्पसंख्यक होने पर भी हमें विशेष हानि नहीं होगी, क्योंकि संख्या में कम होकर भी हम गुणवत्ता में बहुत श्रेष्ठ हैं। हमारा एक-एक व्यक्ति दस-दस पर भारी है।

समाज में एकता या संगठन की भावना बनाने के लिए आचार्यश्री ने अनेक कार्य किये। जैसे कि- पूरी समाज को एक पंचवर्णी ध्वजा प्रदान की, भगवान महावीर का 2500वां निर्वाणोत्सव मनवाया, सभी परम्पराओं के विद्वानों को पुरस्कार देकर सम्मानित किया, इत्यादि। परन्तु इनमें भी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि उन्होंने इसके लिए अनेक सूत्र-वाक्य बनाकर समाज को प्रदान किये, जिनमें से कतिपय निम्नलिखित सूत्र-वाक्य तो अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए-

1. मतभेद हो, पर मनभेद नहीं होना चाहिए।

2. मत टुकराओ, गले लगाओ, धर्म सिखाओ |

3. कैंची का काम मत करो, सूई-धागे का काम करो |

पूरी समाज में इन सूत्रवाक्यों का जादू जैसा असर देखा गया | प्रायः सभी कार्यक्रमों और सभी पत्रिकाओं में ये सूत्रवाक्य दिखाई देने लगे | स्थान-स्थान पर दीवारों और कलेंडरों पर भी लिखे गये | इन सूत्रवाक्यों से समाज में एकता और समन्वय का अच्छा वातावरण निर्मित हुआ |

सूत्रवाक्यों के अतिरिक्त आचार्यश्री ने शास्त्रों में से भी इस विषय के अनेकानेक गाथा-श्लोकों को खोजा और फिर उन्हें बारम्बार सभाओं में सुनाया | न केवल सुनाया, वे इनकी बड़ी सुन्दर व्याख्या भी प्रस्तुत करते थे | उनका कहने का अंदाज ही निराला था, जिसे सुनकर सभी प्रभावित हो जाते थे | यहाँ उनकी उस व्याख्या को बताने का अवकाश तो नहीं है, परन्तु उन गाथा-श्लोकों को मैं अवश्य प्रस्तुत करना चाहता हूँ | मुझे विश्वास है कि यदि हम सभी इन गाथा-श्लोकों पर गंभीरतापूर्वक चिंतन-मनन करेंगे तो हमें अपूर्व लाभ होगा और समाज में भी एकता और समन्वय का सुन्दर वातावरण बनेगा |

इन गाथा-श्लोकों में न केवल आचार्यश्री का, अपितु सभी जैनाचार्यों का अत्यन्त उदार सामाजिक दृष्टिकोण अभिव्यक्त हो रहा है | समाज के सभी कर्णधारों को इन पर गम्भीरता से चिन्तन-मनन करना चाहिए, इससे सभी का हित होगा | जैनाचार्यों के वे गाथा-श्लोक मुख्यतः इस प्रकार हैं-

**उच्चावचजनप्रायः, समयोऽयं जिनेशिनाम् |**

**नैकस्मिन् पुरुषे तिष्ठेदेकस्तम्भ इवालयः॥**

-सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचम्पू, 7/90

**अर्थ-** यह जिनशासन छोटे-बड़े अनेक प्रकार के मनुष्यों पर आधारित है | कोई यह न समझे कि यह एक ही पुरुष पर खड़ा है। क्या कोई विशाल महल एक ही स्तम्भ पर खड़ा रह सकता है?

**एकोदरा पृथक्ग्रीवा, अन्योन्यफलभक्षिणः।**

**असहन्ता तं विनश्यन्ति, भारुण्डा इव पक्षिणः॥**

-मदनपराजय,

**अर्थ-** जिनका उदर एक है, परन्तु ग्रीवा (मुख) भिन्न-भिन्न होने से एक-दूसरे के फल का भक्षण करते हैं, वे यदि एक-दूसरे को सहन नहीं करेंगे तो भारुण्ड पक्षी के समान दोनों ही नष्ट हो जाएँगे।

**ज्ञानं पूज्यं तपोहीनं, ज्ञानहीनं तपोर्हितम् |**

**यत्र द्वयं स देवः स्याद्, द्विहीनो गणपूरणः॥**

-सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचम्पू, 8/15

**अर्थ-** तप कम हो और ज्ञान अधिक हो, तो वह भी पूज्य है और ज्ञान कम हो, तप अधिक हो तो वह भी पूज्य है। यदि ज्ञान और तप दोनों ही हों तो वह तो परमपूज्य है। किन्तु जो ज्ञान और तप दोनों से ही रहित है वह तो केवल संख्या पूरित करने वाला है।

यथास्वं दानमानाद्यैः, सुखीकृत्य विधर्मणः।  
सधर्मणः स्वसात्कृत्य, सिद्ध्यर्थी यजतां जिनम् ॥

-पंडित आशाधरसूरि, सागारधर्माभूत 2/33

अर्थ- अपने साधर्मी की तरह विधर्मी को भी दान-मान देकर सुखी करना चाहिए, जिससे जैनधर्म की प्रभावना का कार्य सिद्ध हो ।

सर्व एव हि जैनानां, प्रमाणं लौकिको विधिः।  
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न, न चापि व्रतदूषणम् ॥

-आचार्य सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचम्पू, 8/22

अर्थ- जैनों को वे सर्व लौकिक विधान स्वीकार हैं, जिनसे सम्यग्दर्शन की हानि न हो और व्रतों में भी दोष न लगे।

जं सक्कदि तं किज्जदि, जं च ण सक्कदि तहेव सद्दहणं ।  
सद्दहमाणो जीवो, पावदि अजरामरं ठाणं ॥

-आचार्य कुन्दकुन्द, दंसणपाहुड, गाथा 22

अर्थ- जो शक्य हो वह करो और जो तुमसे शक्य नहीं हो उसकी भी श्रद्धा तो अवश्य करो, क्योंकि श्रद्धा करनेवाला जीव एक दिन अवश्य ही अजर-अमर पद को प्राप्त करता है ।

जइ जिणमयं पवज्जह, तो मा ववहारणिच्छह मुयह ।  
एक्केण विणा छिज्जइ, तित्थं अण्णेण पुण तच्चं ॥

-आचार्य अमृतचन्द्र, समयसारटीका, गाथा 11

अर्थ- यदि जिनमत का प्रवर्तन करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय -इन दोनों ही नयों को मत छोड़ो, क्योंकि एक के बिना तीर्थ का नाश हो जाएगा और दूसरे के बिना तत्त्व का ।

धम्मसभा णिप पंच य लोगा य बंधुवग्गाणि ।  
इण विरुधं वच करदि स च सठ लोगणिंद दुखलहो ॥

-पं. टेकचन्दजी, सुदृष्टितरंगिणी 100

अर्थ- धर्मसभा, राजा, पंच, समाज के प्रतिष्ठित लोग और बन्धुवर्ग इनके विरुद्ध बोलने वाला व्यक्ति शठ है, लोकनिन्द्य है और दुःख का पात्र है।

सगुणः निर्गुणः वापि, श्रावको मन्यते सदा ।  
नावज्ञा क्रियते यस्मात्, तन्मूला धर्मवर्तना ॥

-इंद्रनंदि, नीतिसार, 91

अर्थ- गुणवान हो या गुणहीन सभी श्रावक हमेशा मान्य हैं और उनकी कभी भी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि धर्म की प्रवृत्ति सभी के मूलाधार से होती है।

नामतः स्थापनातोऽपि, जैनः पात्रायते तराम् ।

स लभ्यो द्रव्यतो धन्यैर्भावतस्तु महात्मभिः॥

-सागार धर्माभूत, 2/54

**अर्थ-** नाम जैन और स्थापना जैन भी उत्कृष्ट पात्र हैं। यदि द्रव्य से और भाव से मिल जाएँ तो वे और भी श्रेष्ठ हैं। हमें सभी को हृदय से स्वीकार करना चाहिए।

जिनधर्मं जगद्धंभुमनुबद्धुमपत्यवत् ।  
यतीञ्जनयितुं यस्येत्तथोत्कर्षयितुं गुणैः॥

-सागार धर्माभूत, 2/71

**अर्थ-** जैनधर्म सारे जगत का बंधु है और वह पुत्र की भाँति सभी की रक्षा करता है। जैनधर्म के आराधक यतियों को जन्म देने के लिए और उनके गुणों को बढ़ाने के लिए हमें अवश्य प्रयत्न करना चाहिए।

ग्रामन्तरोपगतयोरेकामिषसंगजातमत्सरयोः।  
स्यात् सख्यमपि शूनोर्नहि वादिनो स्यात् ॥

-सिद्धसेन बत्तीसी,

**अर्थ-** गली में बैठे हुए दो कुत्तों में तो रोती के टुकड़े पर थोड़ी देर के लिए ही वैर-भाव देखा जाता है परन्तु दो वादियों में जो एक ही मार्ग के होते हैं, प्रेम नहीं दिखाई देता।

इसप्रकार हम समझ सकते हैं कि आचार्यश्री ने अपने अनुभव से और शास्त्र से भी पूरी जैन समाज को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए अद्भुत योगदान किया। आवश्यकता है आज उन बातों को भलीभाँति समझने और अपनाने की। आचार्यश्री को इस बात की बड़ी पीड़ा होती थी कि लोग जैन धर्म की अनेकविध प्रशंसा करते हुए भी उनकी आपसी द्वेषभावना पर व्यंग्य करते थे, जैसा कि वे कबीर के इस दोहे को उद्धृत करके कहते थे-

पाडोसी से रूसना, तिल-तिल सुख की हानि ।  
पंडित भये सरावगी, पाणी पीवे छाणि ॥

अतः हम सबको परस्पर वात्सल्य भाव से रहने की कला सीखनी चाहिए । यह अत्यंत आवश्यक है, वरना हम समाप्त हो जाएँगे । ऐसी स्थिति न आए और सम्पूर्ण जैन समाज में एकता और सौहार्द का सुन्दर वातावरण बने -इसी भावना के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ ।